Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

उपनिषदों में चेतना विषयक चिन्तन

श्रीमति चारु दीक्षित

शोधार्थी, योग विभाग, बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल म.प्र.

डॉ. साधना दौनेरिया

विभागाध्यक्ष, योग विभाग, बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल म.प्र.

Article Info
Volume 5, Issue 6
Page Number : 77-82

Publication Issue :
November-December-2022

Article History
Accepted : 01 Dec 2022
Published : 20 Dec 2022

सारांश :- मानव जीवन का लक्ष्य भौतिक भोगोपभोग की उपलब्धि नहीं है वरन् अपनी अन्तरात्मा रूपी चेतना मे उन भौतिक बंधनों से मुक्त होने एवं ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले इस शरीर मे निहित असीमित आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन कर अपने सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप का आभास करना है। प्रत्येक मनुष्य मे विवेक चेतना अंतर्निहित होती है। परन्तु जब तक इसका पूर्णत: जागरण नहीं होता, तब तक मनुष्य अपने चेतन मन के द्वारा केवल बुद्धि और तर्क के आधार पर ही अपने मन की वृत्तियों के अनुरूप व्यवहार करता है व इस वृत्तिरूपेण व्यवहार को उचित ठहराने के लिए कोई न कोई तर्क ढूंढ ही लेता है। इस तरह तो मानव, वनस्पति व पशुओं के समकक्ष ही खड़ा दिखता है। इसलिए अपनी मौलिक मनोवृत्तियों के प्रेरक बलों पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपनी सुषुप्त विवेक चेतना को जागृत करें व विकसित करें।

कूट शब्द : चेतना, व्यष्टि चेतना, समष्टि चेतना, ऋत् , पंचकोश।

प्रस्तावना - चेतना एक बहुत ही गूढ़ व रहस्यमय शब्द है। इसके साथ ही यह बहुत व्यापक भी है। यद्यपि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भिन्न-भिन्न रूपों में व्याप्त है, परन्तु इसकी वास्तविक अभिव्यक्ति मानव चेतना के उदय के साथ ही हुई। जब से मानव ने अपने अस्तित्व पर विचार करना प्रारम्भ किया, तभी से उसने देखा कि इस सृष्टि में केवल मानव को ही ज्ञानवान होने की महत्ता प्राप्त है। इस विशेषता ने मानव को सृष्टि से बहुत ऊपर प्रतिष्ठित कर दिया और उसने ब्रह्माण्ड के रहस्यों को खोजना आरम्भ कर दिया। परन्तु जैसा कि कठोपनिषद् मे वर्णन किया है कि इंद्रियाँ स्वभाव से बाहर के विषयों को अनुभव करने वाली बनी हैं। अत: जागने की अवस्था में जब जीवात्मा इंद्रियों से कार्य लेता है तब इन्द्रियों को बाहर की ओर फैलाता है, जिससे उसे बाहर के विषयों का ज्ञान तो होता है, किन्तु अंतरात्मा को नही देख पाता। जिस मनुष्य ने अमरत्व की इच्छा करके अपनी इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर से खींचकर भीतर संयमित कर लिया, वही दुर्लभ प्रत्यगात्मा को देख सकता है। यथा –

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥[1]

जब मानव का ध्यान बाह्य तथ्यों और दृश्य जगत के निरीक्षण से हटकर आन्तरिक शक्तियों की ओर गया तब उसका साक्षात्कार 'ऋत्' सिद्धान्त से हुआ। उसने जाना कि ऋत् आधारभूत सिद्धान्त की तरह प्रकृति के सम्पूर्ण घटना जगत के पीछे अवस्थित है। ऋत् का सिद्धान्त प्रत्येक सजीव एवं निर्जीव प्राणी को स्वयं उसके अन्तरस्थ अस्तित्व के नियम के पालन के लिए बाध्य करता है। वह पवन को बहनें, जल को प्रवाहित होने और मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करने का आदेश देता है।

ऋत् की संकल्पना चेतना की संकल्पना के काफी समीप कही जा सकती है और यही संकल्पना बाद में मानस व प्राण के रूप में परिवर्तित हो गई। वैदिक काल में ऋषियों ने ध्यान योग में परम सत्ता (समष्टि चेतना) तथा समष्टि चेतना की भांति व्यष्टि चेतना में निहित चैतन्य तत्व का भी साक्षात्कार किया। ऋषियों ने अनुभव किया कि मानव चेतना अर्थात् व्यष्टि चेतना समष्टि चेतना का ही अभिन्न अंग है। व्यष्टि चेतना मौलिक रूप से समष्टि चेतना ही है परन्तु अविद्या के कारण व्यष्टि चैतन्य स्वयं को शरीर परिमाणी रूप मानता है। अज्ञान युक्त जीवात्मा चेतना के मनस स्तर पर विद्यमान रहती है। इसलिए मानव चेतना को मन के द्वारा भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभवों का ज्ञान होता रहता है।

उपनिषदों में चेतना का स्वरूप : उपनिषदों की तात्विक चर्चाओं में, संवाद में ज्यादातर इस जगत के मूल कारण की चर्चा दृष्टिगत होती है। अपनी खोज के अन्त में ऋषियों ने जो तत्व पाया, वह ब्रह्म है। इस ब्रह्म तत्व की खोज करते-करते उन्होंने यह भी चिन्तन किया कि हमारे इस मनः शरीर संकुल के पीछे किसी शाश्वत तत्व की सत्ता है भी या नही। उपनिषदों के विषयों की यह खोज उन्हें आत्मतत्व की स्थापना तक ले गई। वही आत्मतत्व, जीव, चैतन्य व चेतना आदि नामों से जाना जाता है।

शुद्ध चेतना आत्मा का मूल स्वरूप है। परन्तु वह केवल शुद्ध चैतन्य हमारी सभी अवस्थाओं में नहीं रहता। वह न जागृत में न स्वप्न में, न तो सुषुप्ति में शुद्ध चैतन्य है। यह तीनों अवस्थाएं मायिक हैं।

अतः इन तीनों अवस्थाओं में रहता हुआ चैतन्य या तो आभासित है, या प्रतिबिम्बित है, या अवच्छिन है अथवा उपहित ही है। इन तीनों अवस्थाओं से परे उच्चकोटि की चौथी तुरीय अवस्था में ही आत्मतत्व का पारमार्थिक स्वरूप प्राप्त हो सकता है। जाग्रत (शरीर चेतना), स्वप्न चैतन्य तथा सुषुप्ति चैतन्य की उपाधियों से या विशेषणों से सर्वथा मुक्त - विशुद्ध चैतन्य (उनसे सर्वथा अलग चैतन्य) अपने मूल विशुद्ध रूप में विद्यमान रहता है। इस चौथी अवस्था का नाम तुर्या या तुरीय अवस्था है।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन छन्दोग्योपनिषद् मे बड़े ही रोचक ढंग से एक आख्यायिका के द्वारा वर्णित किया गया है। इस उपनिषद् के आठवें अध्याय में देवता तथा असुरों ने आत्मतत्व की जिज्ञासा से प्रेरित होकर इन्द्र तथा विरोचन को प्रजापति के पास भेजा। प्रजापति ने उन्हें बत्तीस वर्ष तक कठोर तप करने की आज्ञा दी और बाद में बतलाया कि आँखों में, जल में व दर्पण मे जो पुरुष दिखाई देता है। वही आत्मा है। विरोचन को तो संतोष हो गया पर इन्द्र ने सोचा यदि ऐसा है, तो शरीर के अंधत्व, काणत्व, पंगुत्व से आत्मा भी अंधा, काणा व पंगु हो जाएगा। अपनी शंका का निवारण करने जब वह प्रजापति के पास पुनः पहुँचे तो प्रजापति ने स्वप्नचैतन्य को आत्मा बताया।

---

[1]. कठोपनिषद, (अध्याय- द्वितीय, चतुर्थ वल्ली, श्लोक-1), उपनिषत्सञ्चयनम्, प्रथम संस्करण (2015), खण्ड- प्रथम, शास्त्री आचार्य केशवलाल वी., चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृष्ठ संख्या-29

इन्द्र ने सोचा स्वप्न में हम दु:खानुभव करते है, आँसू बहाते हैं तो आनन्दरूप आत्मा में दु:ख कैसा? तत्पश्चात् प्रजापति ने सुषुप्ति चैतन्य को आत्मा बताया। परन्तु विचार करने पर इन्द्र को उससे भी संतुष्टि नहीं हुई क्योंकि सुषुप्ति काल में तो अपने अस्तित्व का भी भान नही रहता, तो आत्मा का भान कैसे होगा। उस समय तो चैतन्य का ही अभाव दिखाई देता है। अन्त में प्रजापति ने उसे पारमार्थिक आत्मतत्व का ज्ञान दिया, कि इन तीनों प्रकार के चैतन्यों से पृथग्भूत, उपाधिरहित विशुद्ध चैतन्य ही आत्मा है जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति की ये तीन अवस्थायें उसी विशुद्ध चेतना की विविध दशाएं हैं। जाग्रत अवस्था में आत्मा बाहर की वस्तुओं का अनुभव करता हैं। स्वप्नावस्था में भीतर की मानस वस्तुओं का अनुभव करता है और सुषुप्त अवस्था में केवल अपने आनन्द स्वरूप का ही अनुभव करता है। चौथी तुरीय अवस्था में आत्मा में इन गुणों को सर्वथा अभाव रहता है। उस समय न बाह्य चेतना है, न अन्त–सुचेतना और न ही दोनों का समिश्रण ही है। वह आत्मा, कूटस्थ, अविकारी है और उसी आत्मा की परब्रह्म (निर्गुण ब्रह्म) के साथ सर्वतोभावेन एकता उपनिषदों में मानी गयी है।

कठोपनिषद् में मानव चेतना जीवात्मा को शरीर, इन्द्रियों, मनस एवं बुद्धि से माना गया है। शरीर रथ के समान है और आत्मा रथी (स्वामी) है, बुद्धि सारथी है, मनस लगाम है, ज्ञानेन्द्रियाँ घोड़े हैं, विषय क्षेत्र हैं। ज्ञानेन्द्रियों का संचालन मनस् के द्वारा होता है। मनस् का संचालन बुद्धि करती है। ज्ञानेंद्रियाँ मनस् और बुद्धि से युक्त आत्मा ही मानव चेतना है। यथा –

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरँ रथमेव तु ।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रगहमेव च ॥[2]

प्रश्नोपनिषद में ऋषि पिपलाद द्वारा दिए गए उत्तर में मानव चेतना का स्वरूप स्पष्ट होता है। जिसमें कहा गया है– वह जीवात्मा (व्यक्ति चैतन्य) जो देखता है, स्पर्श करता है, सुनता है, सूँघता है, स्वाद लेता है, सोचता है, अनुभव करता है, और कार्य करता है, जो इन्द्रियों को वश में रखता है और जो जीवात्मा व्यष्टि चेतन के रूप मे पहचाना जाता है, वह वही है, जो उच्चतम अविनाशी आत्मा पर अधिष्ठित है। यथा–

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ।

स परेऽक्षर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥[3]

पंचकोश की अवधारणा : तैत्तिरीय उपनिषद् 11 प्रमुख उपनिषदों में से एक प्रधान उपनिषद है। जिसका विभाजन तीन वल्लियों (अध्याय) में किया गया है– शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्द तथा भृगुवल्ली। इस उपनिषद् की दूसरी (ब्रह्मानन्द) वल्ली में पंचकोश का वर्णन विस्तारपूर्वक प्राप्त होता है जिसमें जीव के पाँच कोशों का महिमा सहित वर्णन किया गया है। ये पाँच कोश है –

1. अन्नमय कोश
2. प्राणमय कोश
3. मनोमय कोश
4. विज्ञानमय कोश

---

[2]. कठोपनिषद, (अध्याय– प्रथम, तृतीय वल्ली, श्लोक–3), उपनिषत्सञ्चयनम्, प्रथम संस्करण (2015), खण्ड– प्रथम, शास्त्री आचार्य केशवलाल वी., चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृष्ठ संख्या–26

[3]. प्रश्नोपनिषद, (चतुर्थ प्रश्न, श्लोक–9) उपनिषत्सञ्चयनम्, प्रथम संस्करण (2015), खण्ड– प्रथम, शास्त्री आचार्य केशवलाल वी., चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृष्ठ संख्या– 112

5. आनन्दमय कोश

अन्नमय कोश : पृथ्वी (अन्न) का आश्रय लेकर रहने वाले जो सभी प्राणियों का देह हैं, वे देह अन्न से ही उत्पन्न होता हैं और अन्न से ही पोषित होता है। तथा अन्न के न मिलने पर वह अन्न (पृथ्वी) में ही विलीन हो जाता है। लेकिन जीवात्मा विलीन नही होती है। अत: स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहा गया है। यथा–

अन्नाद्वै प्रजा: प्रजायन्ते । या: काश्च पृथिवींश्रिता: । अथो अनेनैव जीवन्ति ।

अथैनदपि यन्त्यन्तत: । अन्नँहि भूतानां ज्येष्ठम् ।।[4]

प्राणमय कोश : अन्नमय कोश के अन्दर प्राणमय कोश है। यह शरीर में गति देने वाली प्राणशक्ति से विनिर्मित हुआ है। यह प्राण पर आश्रित है। मनुष्य और पशु आदि सभी प्राणी प्राण का अनुसरण करने की चेष्टा करते हैं। प्राण ही प्राणियों का जीवन है; इससे वह सबका आयुष कहा जाता है। यथा–

तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमय: ।

तेनैष पूर्ण: । स वा एष पुरुषविध एव ।[5]

मनोमय कोश : यह प्राणमय कोश के अन्दर है। यह मन तथा इन्द्रियों पर निर्भर है, मन और ज्ञानेन्द्रियों का विकाररूपी यह कोश आत्मस्वरूप को आच्छादित् करके संशय रहित आत्मा को संशययुक्त, शोक मोहरहित आत्मा को शोकमोहादियुक्त और दर्शनरहित आत्मा को दर्शन आदि का कर्ता रूप प्रकट करता है। यथा–

तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा मनोमय: तेनैष पूर्ण: स वा एष पुरुषविध एव ।[6]

विज्ञानमय कोश : यह कोश आत्मा स्वरूप को आच्छादित करके अकर्ता आत्मा को कर्ता, निश्चयरहित आत्मा को निश्चययुक्त और जाति–अभिमान–रहित आत्मा को जाति–अभिमान–युक्त जैसा प्रकट रहता है। कर्तत्व, भोक्तृत्व, सुखित्व आदि अभिमान ही इस कोश का गुण है। यथा–

तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमय: ।

तेनैष पूर्ण: स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविध: ।[7]

आनन्दमय कोश : यह कोश विज्ञानमय कोश के अन्दर हैं यह आनन्द रूप है। निश्चय ही उस विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न उसके भी भीतर रहने वाला आत्मा आनंदमय परमात्मा है। उसी से यह विज्ञानमय पूर्णत: व्याप्त है। यह आनन्दमय परमात्मा भी पुरुष के समान आकार वाला ही है। यथा –

तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमय: ।

---

4. तैत्तिरीयोपनिषद, (ब्रह्मानन्दवल्ली, द्वितीय अनुवाक, मन्त्र–1) उपनिषत्सञ्चयनम्, प्रथम संस्करण (2015), खण्ड– प्रथम, शास्त्री आचार्य केशवलाल वी., चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृष्ठ संख्या– 113

5. तैत्तिरीयोपनिषद, (ब्रह्मानन्दवल्ली,द्वितीय अनुवाक, मन्त्र–1) उपनिषत्सञ्चयनम्, प्रथम संस्करण (2015), खण्ड– प्रथम, शास्त्री आचार्य केशवलाल वी., चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृष्ठ संख्या– 113

6. तैत्तिरीयोपनिषद (ब्रह्मानन्दवल्ली,तृतीय अनुवाक, मन्त्र–1) उपनिषत्सञ्चयनम्, प्रथम संस्करण (2015), खण्ड– प्रथम, शास्त्री आचार्य केशवलाल वी., चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृष्ठ संख्या– 114

7. तैत्तिरीयोपनिषद (ब्रह्मानन्दवल्ली,चतुर्थ अनुवाक, मन्त्र–1) उपनिषत्सञ्चयनम्, प्रथम संस्करण (2015), खण्ड– प्रथम, शास्त्री आचार्य केशवलाल वी., चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृष्ठ संख्या– 114

तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः ।[8]

उपसंहार : इस प्रकार मानव चेतना जिसका उदय मन के स्तर पर होता है पूर्ण विकसित अवस्था नहीं है। जीवात्मा जिसका अस्तित्व अविद्या के कारण है वह अनादि माया के वशीभूत होकर सांसारिक जीवन के बंधनों में जकड़ा रहता है। जब वह इस बन्धन से मुक्त हो जाता है तब अपनी स्वाभाविक बाह्य स्थिति को प्राप्त कर लेता है तब यह शुद्ध चैतन्य की अवस्था या चेतना की पूर्ण विकसित अवस्था कही जाती है।

[8]. तैत्तिरीयोपनिषद (ब्रह्मानन्दवल्ली,पंचम अनुवाक, मन्त्र–1) उपनिषत्सञ्चयनम्, प्रथम संस्करण (2015), खण्ड– प्रथम, शास्त्री आचार्य केशवलाल वी., चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृष्ठ संख्या– 115

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्री, आचार्य केशवलाल वी., उपनिषत्सञ्चयनम् (प्रथम खण्ड), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण (2015)
2. शास्त्री, आचार्य केशवलाल वी., उपनिषत्सञ्चयनम् (द्वितीय खण्ड), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण (2015)
3. शास्त्री, आचार्य केशवलाल वी., उपनिषत्सञ्चयनम् (तृतीय खण्ड), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण (2014)
4. राधाकृष्णन, डॉ., भारतीय दर्शन, (प्रथम-खण्ड), राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, संस्करण-(2008)
5. राधाकृष्णन डॉ्, उपनिषदों का संदेश, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण (1951)
6. कुमार, डॉ् कामाख्या, मानव चेतना एवं योग विज्ञान, ड्रोलिया पुस्तक भण्डार, हरिद्वार-249410, प्रथम संस्करण (2010)
7. शर्मा, आचार्य श्री राम, 108 उपनिषद (ज्ञानखण्ड), संस्कृत संस्थान, बरेली, संस्करण (1996)
8. शर्मा, आचार्य श्री राम, 108 उपनिषद (साधनाखण्ड), संस्कृत संस्थान, बरेली, संस्करण (1996)
9. शर्मा, आचार्य श्री राम, 108 उपनिषद (ब्रह्मविद्याखण्ड), संस्कृत संस्थान, बरेली, संस्करण (1996)
10. भारद्वाज, डॉ् ईश्वर, मानव चेतना, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण (2011)